प्रियवृत सिंह और अन्य

बनाम

श्याम जी सहाय

आपराधिक अपील संख्या- 1230/2008

5 अगस्त 2008

(डॉ. अरिजीत पसायत और डॉ. सतशिवमए जे.जे.)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482- उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियाँ- पति के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही धारा 494 ए, 120 बी और धारा 109 आई.पी.सी. और धारा 3 और 4 दहेज निषेध अधिनियम, 1961. आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 482 के तहत अपील.उच्च न्यायालय द्वारा दरकिनार. अपील पर अभिनिर्धारित किया गयाः

धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए निर्धारित मापदंडों को देखते हुए मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया गया - दंड संहिता, 1860, एस. एस. 494, 120 बी और 109-दहेज निषेध अधिनियम, 1961- धारा 3 और 4 अपीलार्थी सं. 3 अपीलार्थी सं. 1 से विवाहित थी पक्षों के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए और वे एक ही घर में अलग रहने लगे। इसके बाद, अपीलार्थी नं.3 पत्नी ने अपना वैवाहिक घर छोड़ दिया और अपने माता-पिता के साथ रहने लगी। इस बीच, अपीलार्थी नं. 1 पति ने शादी के विघटन के लिए मुकदमा दायर किया इस आधार पर की पत्नी द्वारा उसके साथ क्रूरता और उत्पीड़न किया गया। मुकदमा एकतरफा घोषित किया गया था। अपील दायर करने के लिए सीमा अवधि की समाप्ति के बाद, अपीलार्थी नं. 1 ने एन. से शादी की थी।

2 वर्षों बाद, अपीलार्थी नं. 3 ने अपीलार्थी नं. 1 और उसके परिवार के खिलाफ पुनर्विवाह, दहेज मांग और उत्पीड़न कि शिकायत दर्ज कराई अपीलार्थी नं. 1 और उसके परिवार के सदस्यों ने अपीलार्थी नं. 1, दहेज की मांग और उत्पीड़न अंतर्गत 494, 120 बी और धारा 109 आई.पी.सी. और दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 व 4 - अपीलार्थी नं.3 रिस्टोरेशन भी दाखिल किया गया- अपीलार्थी नं. 3 ने एकतरफा आदेश को वापस लेने के लिए याचिका लगाई, जिसे बाद में स्वीकार कर लिया गया था। अपीलार्थी नं. 1 ने न्यायिक मजिस्ट्रेट की विशेष अदालत के समक्ष आवेदन दायर किया गया जिसे खारिज कर दिया गया। अपीलार्थी नं. 1 फिर अंतर्गत धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने इसे खारिज कर दिया। इसलिए वर्तमान अपील।

अपीलार्थी नं. 1 ने तर्क दिया कि अपीलार्थी सं. 1 के साथ अपीलार्थी सं. 3 की शादी हिंदू विवाह अधिनियम, 1956 की धारा 15 के तहत संरक्षित है, और इसलिए आई पी सी की धारा 494 के तहत कार्यवाही रखरखाव योग्य नहीं है। इसके अलावा यह बताया गया है कि दहेज की कथित मांग का आरोप पहली बार दिसंबर 1994 में लगाया गया था दायर शिकायत में आरोप है कि 1992 में कुछ बार दहेज के लिए प्रताड़ित किया गया था। इसे स्पष्ट नहीं किया गया है कि दो साल से अधिक समय तक कोई कार्यवाही क्यों नहीं की गई। इसी प्रकार शिकायत याचिका में पति के अलावा अन्य रिश्तेदारों को पक्षकार बनाया गया। विशेष रूप से पति के अलावा किसी और की कोई भूमिका नहीं बताई गई और नोटिस सर्विस के बावजूद प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

अपील को अनुमति देते हुएए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया-

1. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पास बहुत व्यापक शक्तियां हैं और इसके प्रयोग में बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता है। न्यायालय को यह देखने के लिए सावधान रहना चाहिए कि इस शक्ति के प्रयोग में उसका निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित है। अंतर्निहित शक्ति को वैध अभियोजन को दबाने के लिए उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। किसी राज्य का सर्वोच्च न्यायालय होने के कारण उच्च न्यायालय को आम तौर पर एक मामलें में प्रथम दृष्टया निर्णय देने से बचना चाहिए जहां सम्पूर्ण तथ्य अधूरे और अस्पष्ट होते हैं, विशेष रूप से तब जब साक्ष्य एकत्रित नहीं किए गए हैं और न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किए गए हैं और इसमें शामिल मुद्देए चाहे वे तथ्यात्मक हों या कानूनीए महत्व के हैं और पर्याप्त सामग्री के बिना सही परिप्रेक्ष्य में नहीं देखे जा सकते हैं

बेशक, कोई भी कठोर नियम इस वाद से संबधित निर्धारित नहीं किए जा सकते जिसमें कि उच्च न्यायालय अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किसी भी स्तर पर कार्यवाही को रद्द करने के लिए करेगा। (पैरा 7, 902 एफ, जी, 903. बी)

2. संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए निर्धारित मापदंडों को ध्यान में रखते हुए, विशेष सी. जे. एम., वाराणसी के समक्ष लंबित आपराधिक मामले में कार्यवाही को निरस्त कर दिया। (पैरा 5 और 9, 901.एफ, 903.डी)

जनता दल बनाम एच. एस. चौधरी 1992(4) एससीसी 305, रघुबीर सरन (डॉ) बनाम बिहार राज्य ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1, मीनू कुमारी बनाम बिहार राज्य 2006 (4) एस. सी. सी. 359, हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1952 (पूरक) 1 एस. सी. सी. 335 पर निर्भर था।

मामला कानून संदर्भ

आपराधिक अपील क्षैत्राधिकारः आपराधिक अपील संख्या 1230/2008

आपराधिक विविध आवेदन संख्या 4501/1996 में उच्च न्यायालय इलाहाबाद के दिनांक 25/10/2004 के अंतिम निर्णय और आदेश से।

अपीलार्थियों की ओर से के. वी. विश्वनाथन, ए. एस. राय, विशाल रंजन राय और देवेंद्र सिंह।

न्यायालय का निर्णय द्वारा-

डॉ. अरिजीत पासायत, जे.

1. अनुमति दी गई।

2. इस अपील में चुनौती इलाहाबाद उच्च न्यायलय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को दी गई है। जिसमें आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973(संक्षेप में सी. आर. पी. सी.) की धारा 482 के संदर्भ में दायर आवेदन को खारीज कर दिया गया थी। अपीलकर्ताओं ने भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 494, 120 बी, और 109 और दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 व 4 के तहत दंडनीय अपराधों से संबधित 1994 के शिकायत मामलें संख्या 896 जिसे बाद में 1995 के आपराधिक मामलें संख्या 931 के रूप में दर्ज किया गया में, उनके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए याचिका दायर की हैं जो कि विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट वाराणसी की अदालत में लंबित हैं। उच्च न्यायालय ने इस विचार के साथ प्रार्थना खारीज कर दी कि निचली अदालत को मुकदमा अविलम्ब समाप्त करने का निर्देश दिया जा सकता हैं और आरोप तय करते समय अपीलकर्ता ऐसे मुद्दे उठा सकते हैं, जो वर्तमान में विवाद में उठाए गऐ हैं, आदेश की तारीख से एक महिने के भीतर ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपस्थित होने और जमानत प्राप्त करने की भी छूट दी हैं।

3. पृष्ठभूमी तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैः

प्रतिवादी की बेटी मधुलिका सिंह का विवाह अपीलकर्ता संख्या 1 प्रियवृत सिंह से हुआ था। प्रियवृत के बेरोजगार होने के कारण मधुलिका ने अपने पति और उसके परिवार के सदस्यों के साथ अशिष्ट व्यवहार करना शुरू कर दिया। विवाद इस हद तक पहुंच गया की मधुलिका ने 07.03.1992 को आत्महत्या करने की कोशिश की। इसके बाद उसने बार-बार आत्महत्या करने की धमकियां देनी शुरू कर दी और अपीलकर्ता को गंभीर रूप से परेशन किया गया। 16.07.1992 से अपीलकर्ता संख्या 1 और मधुलिका एक ही घर में अलग- अलग रहने लगे हालांकि कुछ ही समय बाद मधुलिका ने अपना वैवाहिक घर छोड़ दिया और अपने माता-पिता के घर में रहने लगी। इसी बीच अपीलकर्ता संख्या 1 ने मधुलिका द्वारा उसके साथ की गई क्रूरता और उत्पीड़न के आधार पर उसके और मधुलिका के बीच विवाह को समाप्त करने के लिए 1992 के मुल वाद संख्या 188 में बाराबांकी के सिवील कोर्ट में मुकदमा दायर किया। उक्त मुकदमें का फैसला 01.01.1993 को अपीलकर्ता संख्या 1 के पक्ष में एकपक्षीय रूप से सुनाया गया। हिंदु विवाह अधिनियम,1956(संक्षेप में विवाह अधिनियम) की धारा 28(4) के तहत दिनांक 01.01.1993 की एकपक्षीय डिक्री के खिलाफ दायर करने का समय 31.01.1993 को समाप्त हो गया। 21.02.1993 को विवाह विच्छेद के बाद अपीलार्थी संख्या 1 ने 02.03.1993 को महाराष्ट्र के जलगांव में नेहा उर्फ सुनिता से दोबारा शादी की। 16.12.1994 को प्रतिवादी ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट वाराणसी के समक्ष एक निजी शिकायत दर्ज की जिसमें सभी अपीलकर्ताओं को आरोपी व्यक्तियों के रूप में पेश किया गया। यह आरोप लगाया गया था कि 21.02.1993 को अपीलकर्ता संख्या 1 ने संकट मोचन मंदिर वाराणसी में दूसरी शादी की थी। दहेज उत्पीड़न के आरोप भी लगाए गए। यह भी प्रस्तुत किया गया कि विवाह आई पी सी की धारा 494, 120 बी, 109 व दहेज अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत दंड देने योग्य हैं। 01.06.1995 को विशेष सीजेएम वाराणसी ने सम्मन जारी किया। इसके काफी समय बाद 09.07.1996

को मधुलिका ने एक पक्षीय आदेश को वापस लेने के लिए सिवील जज समक्ष पुनर्स्थापना याचिका दायर की। 09.08.1996 को अपीलकर्ताओं ने विद्वान विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट वाराणसी के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया और सम्मन आदेश का विरोध किया। हालाँकि दिनांक 09.08.1996 के आदेश द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया था। 24.09.1996 को धारा 482 सीआरपीसी के तहत याचिका दायर की गई थी जिसे आपराधिक विविध क्रमांक 4501/1996 के रूप में क्रमांकित किया गया। 02.03.1997 को बहाली याचिका कि अनुमति दी गई । 25.10.2001 को उच्च न्यायालय ने आपराधिक विविध मुकदमें को खारिज कर दिया।

4. अपील के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी क्रमांक 1 का अपीलार्थी क्रमांक 3 के साथ विवाह, विवाह अधिनियम की धारा 15 के तहत संरक्षित है और इसलिए आईपीसी की धारा 494 के तहत कार्यवाही करने योग्य नहीं है। इसके अलावा यह बताया गया है कि दहेज की कथित मांग का आरोप पहली बार दिसंबर 1994 में लगाया गया था। दायर शिकायत में आरोप है कि 1992 में कुछ बार दहेज के लिए प्रताड़ित किया गया था। इसे स्पष्ट नहीं किया गया है कि दो साल से अधिक समय तक कार्रवाई क्यों नहीं की गई। इसके अलावा ऐसा प्रतीत होता हैं कि शिकायत याचिका में पति को अलावा, पति की मां, बाद में विवाहित पत्नि, पति की मां की बहिन, पति के बहनोई और सुनिता के पिता को पार्टी के रूप में शामिल किया गया था। विशेषरूप से पति के अलावा किसी और की कोई भूमिका नहीं बताई गई है और वह भी फरवरी, 1993 में दहेज की मांग के मामलें में, जब शिकायत 06.12.1994 को यानी लगभग 22 महिने बाद दर्ज की गई थी तब यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नोटिस की सेवा के बावजूद प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से कोई भी उपस्थिन नहीं हुआ है।

5. इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग के मानदंड निर्धारित किये गये है।

6. यह धारा उच्च न्यायालय को कोई नई शक्ति प्रदान करती हैं। यह केवल उस अंतर्निहित शक्ति को बताता है, जो संहिता के लागू होने से पहले न्यायालय के पास थी। इसने तीन परिस्थितियों की परिकल्पना की गई है जिसके तहत अंतर्निहित क्षैत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है, अर्थात् (1) संहिता के तहत किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए, (2)अदालत की प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने के लिए और (3) अन्यथा न्याय के सिरों को सुरक्षित करें ऐसा कोई भी अनम्य नियम बनाना न तो संभव है और न ही वांछनीय है जो अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग कोे नियंत्रित करेगा। प्रक्रिया से संबधित कोई भी विधायी अधिनियम संभवतः उत्पन्न होने वाले सभी मामलों के लिए प्रावधान नही कर सकता है। इसलिए अदालतों के पास कानून के व्यक्त प्रावधानों के अलावा अंतर्निहित शक्तियां है, जो कानून द्वारा उन पर लगाए गये कार्यो और कर्तव्यों के उचित निर्वहन के लिए आवश्यक है। यही सिद्धांत है जो उस अनुभाग में अभिव्यक्ति पाता हैं जो केवल उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों को पहचानता है और संरक्षित करता है। सभी अदालतें चाहें वे दिवानी हो या फौजदारी, उनके संविधान में निहीत किसी स्पष्ट प्रावधान के अभाव में, "क्वांडो लैक्स एलिक्वीड काॅन्सेडिट, काॅन्सेडेई विडेटुर आईडी साइन क्वो रेस आईपीसाए एसे नाॅन पोटेस्ट" (जब कानून किसी व्यक्ति को कुछ भी देता है तो यह उसे वह देता है जिसके बिना उसका अस्तित्व नहीं हो सकता) के सिद्धांत पर न्याय प्रशासन के दौरान सही करने और गलत को ठीक करने के लिए आवश्यक सभी शक्तियां रखती है। धारा के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय अपील या पुनरीक्षण न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है। इस धारा के तहत निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग हालांकि व्यापक रूप से किया जाना चाहिए, लेकिन इसका प्रयोग संयम से, ध्यान से, व सावधानीपूर्वक

किया जाना चाहिए और केवल तभी किया जाना चाहिए जब ऐसा प्रयोग धारा में विशेष रूप से निर्धारित परिक्षणों द्वारा उचित हो। इसका प्रयोग पूर्व डेबिटो जस्टिटीया के प्रशासन के लिए वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए किया जाना चाहिए जिसके लिए अकेले अदालतें मौजूद है। न्यायालय का अधिकार न्याय की उन्नति के लिए मौजूद है और यदि अन्याय उत्पन्न करने के लिए उस अधिकार का दुरूपयोग करने का कोई प्रयास किया जाता है तो न्यायालय के पास दुरूपयोग को रोकने की शक्ति है। किसी भी कार्रवाई की अनुमति देना अदालत की प्रक्रिया का दुरूपयोग होगा जिसके परिणाम स्वरूप अन्याय होगा और न्याय को बढ़ावा मिलने में बाधा आएगी। शक्तियों का प्रयोग करते हुए अदालत के लिए किसी भी कार्यवाही को रद्द करना उचित होगा यदि उसे पता चलता है कि इसकी शुरूआत/ जारी रखना अदालत की प्रक्रिया का दुरूपयोग है या इन कार्यवाही को रद्द करने से अन्यथा न्याय के उद्देश्य की पूर्ति होगी।

7. जैसा की ऊपर उल्लेख किया गया है संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के मास मौजूद शक्तिया बहुत व्यापक है और शक्ति की प्रचुरता के लिए इसके प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है न्यायालय को यह देखने में सावधानी बरतनी चाहिए कि इस शक्ति के प्रयोग में उसका निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित हो। किसी वैध अभियोजन को दबाने के लिए अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। किसी राज्य का सर्वोच्च न्यायालय होने के नाते उच्च न्यायालय को सामान्यतः ऐसे मामलें में प्रथम दृष्टया निर्णय देने से बचना चाहिए जहां संपुर्ण तथ्य अधुरे और अस्पष्ट हो, खासकर जब साक्ष्य एकत्र नहीं किए गए हो और अदालत के समक्ष पेश नहीं किए गए हों। इसमें शामिल मुद्दे, चाहें तथ्यात्मक हो या कानूनी, बड़े-बड़े पर्याप्त सामग्री के बिना दृष्टिकोण को उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जा सकता है। बेशक, उन मामलों के संबंध में कोई कठोर नियम नहीं बनाया

जा सकता है। जिनमें उच्च न्यायालय किसी भी स्तर पर कार्यवाही को रद्द करने के अपने असाधारण क्षैत्राधिकार प्रयोग करेगा (देखेंःजनता दल बनाम एच. एस. चैधर 1992(4) एस.सी.सी. 305), रघुवीर सरन (डाॅ.) बनाम बिहार राज्य (ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1) और मीनू कुमारी बनाम बिहार राज्य 2006(4)एस. सी. सी. 359)

8. वर्तमान मामला ऐसा प्रतीत होता है जहां हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल 1952(सप्लीमैंट)1 एस सी सी 335 में दिये गये उदहारणों की श्रेणी 7 स्पष्ट रूप से लागु हैं।

9. ऐसा होने पर अपील स्वीकार करने योग्य है, जैसा कि हम निर्देशित करते है। विशेष सीजेएम वाराणसी के समक्ष लंबित 1994 के केस संख्या 896 की कार्यवाही रद्द कर दी गई हैं।

10. अपील स्वीकार की गई।

अपील स्वीकार

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल सुवास के जरिए अनुवादक न्यायाधिकारी रजनी मीना, आर.जे.एस. द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण यह निर्णय वादी के प्रतिबंधित उपयोग के लिए उसकी भाषा में समझाने के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिएए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।